शिक्षा का समाजशास्त्र: एक परिचय

अमन मदान

शिक्षा समाज में चलने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा और समाज का आपस में एक जटिल रिश्ता है। शिक्षा समाज को प्रभावित करती है और समाज शिक्षा को। शिक्षा का समाजशास्त्र इन्हीं संबंधों को समझने का प्रयास करता है। इस अंक से शिक्षा के समाजशास्त्र पर परिचयात्मक लेखों की यह नियमित शृंखला शुरू की जा रही है।

सूरज अभी पूरी तरह निकला नहीं था और खूब सर्दी पड़ रही थी। मैं कुछ किसानों के साथ खाट पर बैठा था। सभी खेस में लिपटे थे और गरम चाय की चुस्की ले रहे थे। मैं उनको बताने की कोशिश कर रहा था कि शिक्षा का उनके जीवन से क्या संबंध है, यह समझना चाहता हूं। ''पढ़ाई!'' एक किसान जोर देते हुए बोला। ''वह तो बेकार है, हमारे किस काम की है पढ़ाई। यह देखो मेरा बेटा,'' अपने पीछे खड़े एक नौजवान की तरफ इशारा करते हुए, जो कि झेंप गया, ''दसवीं पढ़कर यह तो बेकार हो गया। न तो इसे शहर में कोई नौकरी मिली और अब न ही यह खेती करता है। ऐसी शिक्षा से हम को क्या मतलब है?''

भारत जैसे विकासशील देशों में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। जिन्दगी नए पहलू बदल रही है और चाहे वे हमें पसंद हों या न हों, उन्हें समझना फिर भी जरूरी है। हर मोड़ पर हम नए और पेचीदा सवालों से टकराते हैं। हम अपने-आपसे पूछते हैं कि क्या पुराने तौर-तरीके अब भी सही हैं। उनमें से किसको रखें और किसको छोड़ें? हमारे पूर्वजों के जो संस्कार थे, स्कूल और कॉलेज की शिक्षा हमें वे नहीं सिखाती। उल्टा, वह कई बार ऐसे कैरियर और मूल्यों की तरफ हमें ले जाती है, जिसकी कल्पना हमारे परिवार में किसी ने कभी न की होगी। शिक्षा और उसके द्वारा सिखाए गए मूल्यों के बारे में कई तरह की शंकाएं व्यक्त की जाती हैं। ऐसा लगता है कि समाज में एक व्यापक बाजारीकरण हो रहा है जो कि परिवार और समाज, दोनों को जोड़ने वाले बंधनों को कमजोर किए जा रहा है। ज्यादा पैसे वाली नौकरी अक्सर घर-परिवार से दूर ही ले जाती है। एक आम मान्यता बन रही है कि नई शिक्षित पीढ़ी बदतमीज और मुंह-फट बनती जा रही है। अपने मोबाइल फोन पर ज्यादा और परिवार के साथ कम समय बिताती है। उनसे कहा जाता है कि व्यावसायिक (वोकेशनल) और पेशेवर (प्रोफेशनल) शिक्षा की तरफ जाना चाहिए क्योंकि वहीं ज्यादा नौकरियां हैं। लेकिन यह पेशेवर नौकरियां तो सिर्फ कुछ ही को मिलती हैं। खेती में भी कुछ खास भविष्य दिखता नहीं है और शिक्षा उसका विकल्प ढूंढ़ने का तरीका मानी जाती है। उधर दर्शनशास्त्र और कला, जिनसे संवेदनशीलता और सोचने के तरीके आते हैं, उनमें कोई दाखिला ही नहीं लेता। आज के दौर में, शिक्षा का सवाल विकासशील देशों की बहुत सारी दुविधाओं के साथ जुड़ा है। महिलाएं कह रही हैं कि वे पढ़ना

लेखक परिचय

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

चाहती हैं और सिर्फ मां और पत्नी बनकर ही नहीं रहना चाहतीं। कई ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से दूर रखे गए समुदाय अब शिक्षा की मांग कर रहे हैं। मगर नौकरियां कहां हैं?

समाजशास्त्रीय नजरिये का महत्त्व

शिक्षा को अक्सर मनोवैज्ञानिक नजरिये से देखा जाता है या उसकी समस्याओं को कक्षा और परिवार तक सीमित रखकर देखा जाता है। शिक्षा में सुधार लाने की कोशिशों का ध्यान ज्यादा बेहतर पढ़ाने की विधि, ज्यादा रोचक पाठ्यपुस्तक जैसी बातों पर रहता है। मेरी यहां पर यह प्रस्तावना है कि इन सब पर समाज के स्वरूप का बहुत गहरा असर पड़ता है और इस बात का भी कि समाज में किस तरह के परिवर्तन आ रहे हैं। उदाहरण के लिए, एक छोटे पैमाने और गतिहीन समाज में शिक्षा से कई ऐसी अपेक्षाएं होंगी जो कि एक बड़े पैमाने और गतिशील समाज की शैक्षिक अपेक्षाओं से अलग होंगी। जैसे कि मानवशास्त्री मार्गरेट मीड ने कहा था, एक गतिहीन समाज में छोटों को वही सीखने की जरूरत होती है जो कि बड़ों को पहले से पता होता है। मगर एक गतिशील समाज में बड़ों को छोटों से सीखने में फायदा है। शिक्षा के उद्देश्य और अर्थ का समाज के स्वरूप से गहरा रिश्ता होता है और वे उस स्वरूप के साथ-साथ बदल भी सकते हैं।

समाजशास्त्रीय नजरिया एक व्यक्तिगत या जीववैज्ञानिक नजरिये से अलग है। शायद इसी में उसकी विशेषता है और महत्त्व है। एक उदाहरण एक बोर्ड में टॉप करने वाली छात्रा का हो सकता है। यह मानना होगा कि इसके पीछे उसका परिश्रम और लगन है, जो कि उसकी व्यक्तिगत गुण और विशेषताएं हैं। उसका यह भी कहना हो सकता है कि उसके उत्तीर्ण होने के पीछे उसका अपने विषयों से प्रेम करना है। लेकिन समाजशास्त्री इसके साथ-साथ कुछ ऐसी बातें भी जोड़ेंगे जो शायद उसे सूझी न हों। वे यह कह सकते हैं कि वह ऐसे परिवार और समाज के हिस्से से है जिसमें शिक्षा की बड़ी कदर है। ऐसे परिवार अब सिर्फ लड़कों की ही नहीं, लड़कियों की भी शिक्षा को बहुत महत्त्व देते हैं। यह वह परिवार ही था जिसके कारण वह ऐसे स्कूल में जा सकी जिसमें अच्छी पढ़ाई होती थी। उन्होंने उसे घरेलू कामों से दूर रखा होगा, यह कहते हुए कि वह अपना सारा ध्यान पढ़ाई पर ही लगाए। उसका परिवार ऐसा क्यों था और अन्य परिवारों की तरह क्यों नहीं? समाजशास्त्री इसे कई समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं से जोड़ते हैं जैसे कि भारत के पिछले 50 साल के विकास के दौरान उसका परिवार कहां रहा था? उनका व्यवसाय क्या था? उनकी जाति और धार्मिक समूह की संस्कृति क्या थी? उसके आस-पास घरेलू जीवन से बाहर देखने वाली महिलाओं के किस तरह के उदाहरण थे? उसके स्कूल और माहौल में महिला होने के अर्थ पर किस तरह की बातचीत होती थी? इत्यादि।

हमारे बोर्ड के टॉपर की उपलब्धियों का एक जैविक आधार तो है, क्योंकि वह बोध के स्तर पर सक्षम (cognitively competent) है और कुपोषित (malnourished) या दिमागी तौर पर अक्षम (mentally disabled) नहीं है। मगर उसकी जैविक क्षमताओं का विकास हो पाता है कि नहीं, यह काफी हद तक इस पर निर्भर करता है कि वह किस तरह के सामाजिक परिवेश में पली और बड़ी हुई है और फिर उसने खुद कितनी मेहनत और पहल की है। उसके व्यक्तिगत और जैविक पहलुओं से हटकर उसके जीवन के समाजशास्त्रीय पक्ष को भी समझना आवश्यक है।

समाजशास्त्रियों का मानना है कि यह समझ अधूरी है कि सीखना और शैक्षणिक उपलब्धि एक व्यक्तिगत और निजी मामला है। इसमें समाज का काफी बड़ा हस्तक्षेप होता है। सन् 2009-10 में सिर्फ करीब 17 प्रतिशत कॉलेज जाने वाली उम्र के युवक किसी भी तरह की शैक्षिक संस्था में नाम लिखवाए हुए थे। यानी, 5 में से 1 भारतीय युवक को भी उच्च शिक्षा उपलब्ध नहीं थी। जो कॉलेज या पॉलीटेकनिक नहीं जा पा रहे थे, वे इसलिए नहीं कि यह उनका सिर्फ व्यक्तिगत फैसला और नापसंदगी थी या क्योंकि उनकी बुद्धि उस तरह की पढ़ाई के लिए जैविक रूप से सक्षम नहीं थी। इसका मुख्य कारण उनके दिमाग में कोई व्यक्तिगत या जैविक कमी नहीं थी बल्कि ज्यादातर लोगों के परिस्थिति में या तो उनका परिवार उनकी स्कूल की पढ़ाई का बोझ नहीं ढो सका था या उनको यह उम्मीद नहीं थी कि कॉलेज जाने के बाद भी कोई अच्छी नौकरी मिल सकती थी या कि लड़कियों को ज्यादा पढ़ाकर उनकी शादी करने में दिक्कत हो जाती है; इत्यादि। यह सिर्फ व्यक्तिगत कारण और निर्णय नहीं थे। इन पर बड़ी गहरी छाप थी

कि देश के अलग-अलग हिस्सों में विकास कैसे हुआ और विभिन्न समुदायों और वर्गों का इतिहास क्या रहा है। जो बच्चा एक अंग्रेजी बोलने वाले परिवार और बड़े शहर में पैदा होता है, जहां कई कंपनियां और सरकारी महकमे हैं, वह तो निश्चित ही कॉलेज जाएगा। दूसरी तरफ एक खेतिहर मजदूर के बच्चे को किसी छोटे से कॉलेज में भी जाने के लिए बड़ी मेहनत और असाधारण स्तर की लगन दिखानी पड़ती है।

समाजशास्त्रीय नजरिये के इस्तेमाल से हमें कई सवालों के जवाब ढूंढ़ने में मदद मिलती है। हां, मुमकिन है कि पूरा जवाब नहीं मिले, मगर मदद जरूर मिलती है। कई सवाल जैसे कि मेरे समाज में शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य क्या होना चाहिए, ऐसे सवाल हैं जिनका जवाब सिर्फ समाजशास्त्र से नहीं मिल सकता। इनके लिए दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे अन्य स्रोतों की जरूरत भी पड़ती है। मगर जिन महत्त्वपूर्ण सवालों में समाजशास्त्र काम आ सकता है, वे कुछ ऐसे हैं:

स्कूल में कुछ बच्चे पीछे क्यों रह जाते हैं? हर कक्षा में कुछ बच्चे होते हैं जो कि जल्दी सीखते हैं और कुछ जो कि धीरे सीखते हैं। यह आम तौर पर सुनने को मिलता है कि जल्दी सीखने वाले बच्चे दूसरों से ज्यादा बुद्धिमान होते हैं। समाजशास्त्र इसको कुछ अलग ढंग से देखता है। यह देखा गया है कि जब धीरे सीखने वाले को ऐसे स्कूल में डाला जाता है जहां उसे ज्यादा ध्यान और मदद मिलती है तो उसकी सीखने की गति बढ़ जाती है। कोई बच्चा स्कूल में कैसे करता है, इसका संबंध उसके स्कूल की परिस्थितियों से, उसके सामाजिक परिवेश से और उसके माता-पिता किन सामाजिक समूहों का हिस्सा हैं, इससे भी रहता है। इनके बिना बच्चों के सीखने की प्रक्रियाओं को और उनकी किस तरह से मदद की जा सकती है, इसे समझना कठिन है।

शिक्षा में साधन कैसे और किसे मिलते हैं? आज के भारत में अधिकांश बच्चे ऐसे विद्यालयों में पढ़ते हैं जिनमें या तो पढ़ाई होती नहीं या अच्छे तरीके से नहीं होती। मगर हम यह भी देखते हैं कि विश्व के कई देश, हमसे उलट, अपने अधिकांश बच्चों को ठीक-ठाक पढ़ाई उपलब्ध कराने में कामयाब हैं। यह सफलता महज एक अच्छे शिक्षक के मिल जाने के इत्तफाक की बात नहीं है, इसे बनाने में कई सामाजिक प्रक्रियाएं हैं जिन्हें समझना लाभदायक है, जैसे कि राजनैतिक आंदोलन, आर्थिक परिवर्तन, सांस्कृतिक मांगें; इत्यादि।

अलग-अलग समाज किस तरह की शिक्षा चाहते हैं? आजकल भारत में बहुत सारे छात्रों से यह कहा जाता है कि सिर्फ इंजनियरिंग और चिकित्सा ही अच्छे कैरियर के विकल्प हैं। लेकिन अगर किसी समाज में दार्शनिक और कवि बनने बंद हो जाते हैं, तो उस समाज में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होनी शुरू हो जाएंगी। दार्शनिक और कवि बनने के लिए भी काफी कुछ सीखना पड़ता है। वह कौन सीखेगा और कौन सिखाएगा? इसके अलावा समाज में और भी कई तरह की जरूरतें होती हैं। जैसे कि एक समाज जिसमें कई तरह के वर्ग और समूह हैं और जिन्हें एक साथ रहना है उन्हें एक ऐसी सांस्कृतिक शिक्षा की जरूरत होगी जो उन्हें आपस में सामंजस्य और मित्रता से रहने में मदद करे। मानव इतिहास में सांस्कृतिक शिक्षा की विशेष भूमिका रही है। कुछ ऐसी परिस्थितियां आई हैं जिनमें सांस्कृतिक और तकनीकी शिक्षा का रिश्ता उल्टा हो गया है। शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं, स्पष्ट है कि इनका संबंध इतिहास और समाज की संरचना से है, और वे स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं हैं। समाज विशेष को समझना और उसमें किस तरह की खींचतान चलती है, शिक्षा के उद्देश्य और नीति तय करने के लिए उसे जानना आवश्यक है।

ये कुछ उदाहरण थे कि शिक्षा को समाजशास्त्रीय नजरिये द्वारा देखने से किस तरह की समझ गहरी होती है। आशा है कि इन लेखों की श्रृंखला द्वारा आपको और कई उदाहरण भी देखने-समझने के लिए मिलेंगे।

समाजशास्त्रीय नजरिया मूल रूप से यह है कि लोगों को उनके निजी व्यक्तित्व से और उनके जैविक शरीर की जगह उनके मानव पर्यावरण द्वारा समझा जाए। अगर हम यह जानना चाहते हैं कि शिक्षा में क्या होता है, तो हम यह पूछें कि उस पर विभिन्न तरह के परिवारों का, आर्थिक परिस्थितियों का, समुदायों के आपसी द्वेष, राजनैतिक पहचान और लोगों के एक-दूसरे को प्रेरित करने के बारे में मान्यताओं; इत्यादि का क्या असर होता है।

समाजशास्त्र की परिभाषा

समाजशास्त्र का यह मानना है कि लोग एकांत में नहीं रहते, बल्कि खास तरीके के सामाजिक ढांचे में रहते हैं, जो कि उनके जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि हम समाज के हाथ की कठपुतलियां हैं, जो कि बस उसी के इशारे पर नाचती रहती हैं। हम सोच सकते हैं, विचार कर सकते हैं और फिर चयन भी कर सकते हैं।

परिभाषाएं कई बार ज्यादा मददगार नहीं होतीं। वे इतनी ज्यादा तंग और संक्षिप्त होती हैं कि समझ में ही नहीं आतीं। उदाहरण के लिए, अगर हम शोले फिल्म के बारे में कहें कि वह एक डाकू को पकड़ने की कहानी है। जिन्होंने यह फिल्म देखी है, वे तो इस परिभाषा से कतई संतुष्ट नहीं होंगे और जिन्होंने नहीं देखी उनको भी इससे कुछ खास हासिल नहीं होता। फिर भी शुरुआत में ही थोड़ा बताने की कोशिश करना कि समाजशास्त्र क्या है, शायद अच्छा है। हालांकि असली शोले को देखने के मजे की तरह जैसे-जैसे बात आगे बढ़ेगी, समाजशास्त्र के और रोचक पहलू सामने आएंगे।

समाजशास्त्रीय नजरिया मूल रूप से यह है कि लोगों को उनके निजी व्यक्तित्व से और उनके जैविक शरीर की जगह उनके मानव पर्यावरण द्वारा समझा जाए। अगर हम यह जानना चाहते हैं कि शिक्षा में क्या होता है, तो हम यह पूछें कि उस पर विभिन्न तरह के परिवारों का, आर्थिक परिस्थितियों का, समुदायों के आपसी द्वेष, राजनैतिक पहचान और लोगों के एक-दूसरे को प्रेरित करने के बारे में मान्यताओं; इत्यादि का क्या असर होता है। समाजशास्त्र का यह मानना है कि लोग एकांत में नहीं रहते, बल्कि खास तरीके के सामाजिक ढांचे में रहते हैं, जो कि उनके जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि हम समाज के हाथ की कठपुतलियां हैं, जो कि बस उसी के इशारे पर नाचती रहती हैं। हम सोच सकते हैं, विचार कर सकते हैं और फिर चयन भी कर सकते हैं। क्या हम एक चुनौती का जवाब धैर्य और करुणा से देते हैं या क्रोध से घुमाकर दो जड देते हैं, यह काफी हद तक हमारे हाथ में है। हम किस तरह से अपने-आपको ढालते हैं, यह भी महत्त्वपूर्ण होता है। हम अपने-आपको संगठित भी कर सकते हैं और अपने ऊपर सक्रिय सामाजिक दबावों को तोड़ भी सकते हैं। मगर हम क्या करने का चुनाव करते हैं, उस पर काफी बड़ा असर इस बात का पड़ता है कि हमने किस तरह के उदाहरण हमारे परिवेश में पहले देखे होंगे, जो कि हमारे सामाजिक परिवेश में हमारी क्या जगह है, उससे प्रभावित होता है। अगर मैं ऐसी कक्षा में पढ़ता हूं जिसमें बहुत ज्यादा बच्चे भरे हुए हैं और जिसके शिक्षक को कभी अच्छे शिक्षण प्रशिक्षण का मौका न मिला हो, तो वहां मुझे गणित के बारे में ज्यादा जिज्ञासा होना थोड़ा कठिन हो जाता है। समाजशास्त्र इस तरह के सामाजिक ढांचों और व्यक्तियों के बीच के जटिल लेन-देन के बारे में हैं।

वैसे तो लोग शायद हमेशा से ही समाज और उसके महत्त्व को समझते आए हैं। जब अर्थशास्त्र ने यह कहा कि किसी राज्य के स्थिर रहने के लिए उसकी प्रजा की खुशहाली जरूरी है, यह एक तरह की सामाजिक ढांचे की समझ थी। मगर समाजशास्त्रीय नजरिया इसी तरह की शुरुआती समझ से काफी ज्यादा विकसित और विस्तृत है। वह यह जानने के लिए लोगों का अध्ययन करेगा कि उनके लिए खुशहाली का क्या मतलब है? और वे सरकार को पलटने से पहले कितने दुखों को सहन कर सकते हैं। वह यह भी पूछेगा कि क्या जनता को सुखी रखने के लिए राजे और रजवाड़े ही सबसे अच्छा तरीका है या कुछ और तरीके भी हो सकते हैं? वह अन्य तरह के राजनैतिक ढांचों को भी रेखांकित करेगा और उनके गुणों-अवगुणों का विश्लेषण करेगा। समाजशास्त्र अलग-अलग तरह के समाजों का एक व्यवस्थित अध्ययन करता है, वह सिर्फ हमारे अंतर्ज्ञान के भरोसे नहीं रहता।

समाजशास्त्र और सामान्य बोध (Common Sense)

समाजशास्त्र की लोकप्रियता का एक कारण शायद यह है कि हमारी जिन्दगियां पहले से और ज्यादा पेचीदा हो गई हैं। समाजशास्त्र आज के टेढ़े-मेढ़े हालातों को समझने में मदद करता है। मेरा अपना तजुर्बा तो मेरे पड़ोस, मेरे दोस्तों और परिवार वालों से आता है। यह कुछ सौ लोगों से ज्यादा नहीं होंगे। मगर आज बहुत सारी ऐसी बातें मेरी जिन्दगी को प्रभावित करती हैं जो कि मेरे और मेरे दायरे के तजुर्बे से कहीं बाहर हैं। उदाहरण के लिए, 2008 में कुछ अमरीकी

घरेलू लोन कंपनियां और बैंक ज्यादा लालच में आ गईं और सरकार की लापरवाही के चलते अमरीकी वित्तीय व्यवस्था ढेर हो गई। इसके झटके पूरी दुनिया में महसूस हुए और बेंगलूरु में मेरे दोस्त सलीम ने अपने-आपको बेरोजगार पाया। उसे काफी मुश्किलों से गुजरना पड़ा और वह उसी की हिम्मत थी कि मुस्कुराता रहा। मगर इस ध्वंस में उसका कसूर तो था ही नहीं। कुछ बड़ी दूर-दराज की प्रक्रियाएं थीं जो कि उसके घोंसले को उड़ा कर चली गईं। अगर लोग सिर्फ अपने छोटे से दायरे के हिसाब से देखते तो लगता कि सलीम में ही कुछ कमी थी जिसके कारण उसकी नौकरी चली गई। लेकिन अगर हम ज्यादा बड़े पैमाने पर चीजों को देखेंगे तो स्पष्ट हो जाता है कि यह एक बहुत बड़ा नाटक चल रहा है जिसकी एक बहुत छोटी-सी कड़ी सलीम और उसकी नौकरी का चले जाना और उसकी बेरोजगारी है। समाजशास्त्र की कोशिश रहती है कि वह सीरियल के किरदार को पूरे सीरियल के परिवेश में लाकर देखे।

उदाहरण के लिए, जब हम ग्रामीण इलाके से आए छात्रों की शहरी विद्यालयों में दिक्कतों को देखते हैं तो समाजशास्त्रीय नजरिया हमारे सामने एक अलग तस्वीर रखता है। जिन विद्यालयों में यह बच्चे आते हैं उनके शिक्षकों को लगता है कि वे या तो विषयों को समझते नहीं हैं या वे उनमें रुचि नहीं रखते। समाजशास्त्रियों का कहना है कि हमारे विद्यालयों में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, इम्तिहान, शिक्षक सभी का रुख शहरी सफेद-पोश नौकरी की तरफ है। नतीजा यह होता है कि सफेद-पोश नौकरी करने वालों के बच्चे स्कूल में सबसे ज्यादा घुले-मिले होते हैं। दूसरे सामाजिक परिवेश के बच्चे स्कूल में अपने-आपको कई बार अजनबी से और खोए से महसूस करते हैं। जब हम इस बात को अपने सामने रखते हैं तो बच्चों के स्कूल के माहौल में अपने-आपको ढालने की समस्याओं को नए तरीके से देखना शुरू करते हैं। ग्रामीण बच्चों को हम एक सामाजिक व्यवस्था की असमानताओं और समस्याओं के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते।

बहुत सारी बातों पर हमारी आम तरीके से बनी समझ पर समाजशास्त्रीय शोध हमसे पुनर्विचार करवाता है। यह इसलिए क्योंकि हमारा सामान्य बोध हमारी जानी-पहचानी बातों से और मीडिया जैसे स्रोतों से बनती है। समाजशास्त्र इससे हटकर विज्ञान के तरीकों का इस्तेमाल करके और व्यवस्थित अध्ययन करके अपनी समझ बनाता है। समाजशास्त्र अपने ज्ञान पाने के तरीकों के बारे में सचेत रहता है और प्रमाण पर जोर देता है।

उदाहरण के लिए, अक्सर कहा जाता है कि आई.आई.टी. में अनुसूचित जाति/जनजाति (एस.सी./एस.टी.) छात्रों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। एस. श्रीनिवास राव यह जानना चाहते थे कि वाकई सच क्या है और यदि हां तो किस तरह से। उन्होंने 2005-06 के वर्ष में एक आई.आई.टी. का अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने छात्रों, अध्यापकों और स्टाफ के लोगों के साक्षात्कार किए (राव 2013)। इन साक्षात्कारों और निजी अवलोकनों से राव ने कुछ प्रक्रियाओं को रेखांकित किया जिनके कारण एस.सी./एस.टी. छात्रों पर कुछ ''लेबल'' लगाए जा रहे थे। इनके कारण कुछ व्यक्तियों के साथ भेद-भाव किया जा रहा था। एक प्रक्रिया यह थी कि जो एस.सी./एस.टी. छात्र आई.आई.टी. प्रवेश परीक्षा को नहीं उत्तीर्ण कर पाते उनमें से कुछ को तैयारी स्वरूप कोर्स (Preparatory Course, PC) में एक साल के लिए दाखिला दिया जाता था। यह तैयारी कोर्स उपहास का शीर्षक बन गया था और यह छात्र अपने-आपके बारे में कैसे सोचते हैं और उनके दूसरे लोगों के साथ रिश्तों को प्रभावित कर रहा था। जैसे कि एक छात्र ने राव को बताया -

> ''हमारी भौतिक विज्ञान की क्लास थी और हम अध्यापक से पहली बार मिल रहे थे। लेक्चर के बाद अध्यापक ने कहा कि अगर कुछ सवाल हों तो पूछ लें और मैंने एक सवाल उनके सामने रखा। अध्यापक ने उसका सीधा जवाब न देते हुए, उलट मुझसे दूसरा सवाल कर दिया, 'तुम यह भी नहीं जानते? क्या तुम तैयारी कोर्स (पीसी) के छात्र हो?' मुझे बहुत शर्म आई और बेइज्जती महसूस हुई। यह

मोगली की कहानी, जिसे भेड़ियों ने पाल-पोस कर बड़ा किया था, महज कहानी है। हमें कभी जो इक्का-दुक्का व्यक्ति मिले हैं जो जानवरों के सहारे लंबी अवधि तक जीवित रहे हैं, उनमें मानवों वाली अधिकांश बातें नहीं मिलीं, जैसे परिष्कृत तरीके से संवाद कर पाना, औजार बनाना; इत्यादि। हमारा इंसान बनना समाज में ही संभव है। लोगों के बीच के बहुत सारे फर्क - मगर सब नहीं - समाज के कारण ही हैं।

सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे लोग समाज के सदस्य बनते हैं। जाहिर है यह एक सरल और निर्विवादित प्रक्रिया तो हो नहीं सकती। कुछ लोग सामाजीकरण द्वारा अच्छे दास बनाना चाहेंगे, जो कि आसानी से दब जाएं और सवाल न उठाएं। कुछ यह चाहेंगे कि सामाजीकरण आजाद किस्म के चिंतक बनाए, जो कि हर बात पर सवाल उठाकर उसकी गहराई तक जाएं।

सोचिए कि यह मेरी पहली क्लास थी और मेरी अपने सहपाठियों के सामने क्या छवि बनी होगी। उसके बाद मैंने उसकी क्लास और भौतिक विज्ञान से भी नफरत करना शुरू कर दिया। अब मैं इंजिनियर नहीं बनना चाहता। मैं किसी और कोर्स में जाऊंगा।'' (राव 2013: 210)

राव ने और भी कई बातों की खोज की और आई.आई.टी. प्रणाली पर उनके कई विचार हैं। मगर अभी के लिए हम उनके शोध के अंदाज पर ध्यान दें। उन्होंने कई सैद्धांतिक कृतियों का अध्ययन किया जिनसे उनको लेबल लगाने की प्रक्रिया का छात्रों पर क्या असर होता है उसकी समझ ज्यादा अच्छी हुई। उन्होंने सिर्फ किताबों या अपने पहले के अनुभव से निष्कर्ष नहीं निकाले, बल्कि एक व्यवस्थित तरीके से एक असली आई.आई.टी. के छात्रों और अध्यापकों का अध्ययन किया। यह वास्तविकता का अध्ययन और अवधारणाओं और सिद्धांतों का गठन, यह समाजशास्त्र की विशेषताएं हैं। यहां यह वैज्ञानिक परंपरा से प्रभावित है जो कि वास्तविकता पर जोर देती है और कई तरीकों से यह परखती है कि जो हम सोच रहे हैं, यानी जो हमारे सिद्धांत हैं, क्या वे वास्तविकता से मेल खाते हैं या नहीं। मगर समाजशास्त्र उस तरह का विज्ञान नहीं है जैसा भौतिक विज्ञान होता है। उसमें न्यूटन की तरह बनाए हुए नियम नहीं हैं कि जिनसे हम कह सकें कि एक फेंका हुआ पत्थर कहां जाकर गिरेगा। इंसानों और उनके सामाजिक रिश्तों को समझना फेंके हुए पत्थरों को समझने से काफी ज्यादा मुश्किल काम है। शायद इसलिए भी क्योंकि हम सोच सकते हैं और अपनी दिशा बदल भी सकते हैं।

सामाजीकरणः हमारे स्वयं का बनना

समाजशास्त्र में एक मौलिक बात यह है कि हम सब एक कोरा पन्ना लेकर पैदा होते हैं, जिसे हम अपने अनुभवों द्वारा धीरे-धीरे भरते हैं। हमारा व्यक्तित्व, मान्यताएं और उपलब्धियां सभी हमारे आस-पास के लोगों से मिलते-जुलते हुए, पारस्परिक तरीके से बनती हैं। मानव बच्चा तो इतना लाचार पैदा होता है कि अगर उसके आस-पास दूसरे लोग यानी कि समाज न हो तो वह कुछ दिन भी जीवित न रह पाए। मोगली की कहानी, जिसे भेड़ियों ने पाल-पोस कर बड़ा किया था, महज कहानी है। हमें कभी जो इक्का-दुक्का व्यक्ति मिले हैं जो जानवरों के सहारे लंबी अवधि तक जीवित रहे हैं, उनमें मानवों वाली अधिकांश बातें नहीं मिलीं, जैसे परिष्कृत तरीके से संवाद कर पाना, औजार बनाना; इत्यादि। हमारा इंसान बनना समाज में ही संभव है। लोगों के बीच के बहुत सारे फर्क - मगर सब नहीं - समाज के कारण ही हैं। इसीलिए यह अध्ययन बहुत रोचक हो जाता है कि कैसे अलग-अलग तरह के समाज लोगों को ईमानदार बनना आसान या मुश्किल बनाते हैं, समाज कैसे बदलते हैं, समाज में कौनसी प्रक्रियाएं होती हैं जो कि अच्छाई और बुराई की तरफ ले जाती हैं; इत्यादि। यह अध्ययन हमें मानव जीवन में शिक्षा के महत्त्व के बारे में भी बताता है। शिक्षा से ही हम अपना चरित्र, ज्ञान और कर्म पाते हैं। शिक्षा सिर्फ विद्यालय में नहीं होती, वह समाज के कई हिस्सों में लगातार चलती रहती है।

सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे लोग समाज के सदस्य बनते हैं। जाहिर है यह एक सरल और निर्विवादित प्रक्रिया तो हो नहीं सकती। कुछ लोग सामाजीकरण द्वारा अच्छे दास बनाना चाहेंगे, जो कि आसानी से दब जाएं और सवाल न उठाएं। कुछ यह चाहेंगे कि सामाजीकरण आजाद किस्म के चिंतक बनाए, जो कि हर बात पर सवाल उठाकर उसकी गहराई तक जाएं। समाजशास्त्र जिन मुद्दों पर काम करता है, शायद उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण कुछ यह हैं कि समाज हमें किस तरह का व्यक्ति बनाता है और हम जैसे व्यक्तियों का समाज पर क्या असर पड़ता है। समाजशास्त्री यह मानते हैं कि लोगों में कई तरह की क्षमताएं होती हैं। इनमें से कौनसी क्षमता यथार्थ में तब्दील होती है और कौनसी नहीं, यह काफी हद तक इस पर निर्भर करता है कि हमारा समाज कैसा है और फिर हम कैसी मेहनत करते हैं और किस तरह का विवेक दिखाते हैं।

भारत में शिक्षा का सामाजिक परिवेश

आगे चलकर हम कुछ बुनियादी प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश करेंगे जो भारत में शिक्षा का सामाजिक परिवेश बनाती हैं। यह प्रक्रियाएं हमें भारत में शिक्षा और उसके सामने चुनौतियों को ज्यादा अच्छी तरह समझने में मदद करेंगी। हमारे सामने आने वाली कई रोजमर्रा की समस्याएं और कशमकश असल में इन प्रक्रियाओं से जुड़ी हैं। अतः इन मौलिक प्रक्रियाओं को समेटकर हम कई तरह के मुद्दों पर अपनी पकड़ मजबूत कर पाएंगे। बिना यह कहे कि बस यही महत्त्वपूर्ण हैं, मैं निम्न चार प्रक्रियाओं पर बात करूंगा -

1. हमारी बदलती हुई उत्पादन, आदान-प्रदान और उपभोग की व्यवस्थाएं। यह हमारे मौलिक रिश्तों पर प्रभाव डालते हैं और कहा जाता है कि बाजारीकरण और शोषण दोनों को बढ़ाते हुए, पुराने दमन के कई तरीकों से भी आजाद कर रहे हैं। पूंजीवाद एक ताकत है जो कि इन व्यवस्थाओं को बदल रहा है, विशेष रूप से वैश्वीकरण के जरिए। दूसरी ताकतों में यह मांग भी है कि नैतिकता और संस्कृति को मुनाफे से ज्यादा महत्त्व दिया जाए। और जनतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था अपने-आपमें कई तरह के दबाव पैदा करती है। शिक्षा प्रणाली लोगों को इन प्रक्रियाओं के बीच झोंकती है और खुद भी उनसे प्रभावित होती है।
2. बढ़ती सामाजिक जटिलता। आज के दौर में कई सामाजिक समूहों को एक-दूसरे के साथ रहने के तरीके सीखने की आवश्यकता है। अब न तो वे खुद कहीं भाग सकते हैं और न वे दूसरे को भगा सकते हैं। औद्योगीकरण और आधुनिक राजनीति दोनों ने यह परिस्थिति हमारे सामने लाकर खड़ी कर दी है। अब शिक्षा के सामने सवाल है कि कैसे सभी समूहों को एक सांस्कृतिक डोर में बांधे जो लोगों को जोड़ सके मगर उनकी आजादी और जीवंतता को भी बरकरार रखे।
3. नौकरशाही संगठनों की बढ़त। जैसे-जैसे समाज और उनके अंदर के संगठन बड़े होते जा रहे हैं उन्हें अपना काम करने का तरीका बदलना पड़ रहा है। इस परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण रुख है नियमों का बढ़ना और एक व्यक्तित्व विहीन काम करने का तरीका। शैक्षिक संस्थाओं में भी यह परिवर्तन हुआ है और सरकारी काम करने के तरीके में भी। शिक्षा के कई प्रमुख विवाद इस परिवर्तन से जुड़े हुए हैं।
4. निजी और सामाजिक पहचान। हम समाज में जो करते हैं वह हमारी अपनी खुद की पहचान पर आधारित होता है कि हम कौन और क्या हैं। यह पहचान स्थिर नहीं होती और लगातार विकसित होती रहती है। कई बार छात्र और अध्यापक के बीच का जो तनाव रहता है वह इसी प्रक्रिया पर आधारित रहता है। और शिक्षा में भाषाई, प्रांतीय और राजनैतिक पहचान के सवाल भी।

आगे आने वाले लेखों में इन पर चर्चा होगी। ◆

संदर्भ

Mead, Margaret. 1970. *Culture and Commitment a Study of the Generation Gap.* [1st ed.]. Garden City, N.Y: Published for the American Museum of Natural History, Natural History Press.

Rao, S. Srinivasa. 2013. "*Structural Exclusion in Everyday Institutional Life: Labelling of Stigmatized Groups in an IIT*." *In Sociology of Education in India: Changing Contours and Emerging Concerns*, edited by Geetha Nambissan and S. Srinivasa Rao, 199-223. New Delhi: Oxford University Press.

आगे पढ़िए

Mills, C. Wright. 1975 (1959). *The Sociological Imagination*. Harmondsworth: Penguin.

Bauman, Zygmunt. 1990. *Thinking Sociologically*. Oxford, OX, UK; Cambridge, Mass., USA: B. Blackwell.

2009. भारतीय समाजः कक्षा 12 के लिए समाजशास्त्र की पुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

2009. समाज का बोधः कक्षा 11 समाजशास्त्र की पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

2009. समाजशास्त्र परिचयः कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तकराष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

Aikara, Jacob. 2004. Education: Sociological Perspective. Jaipur and New Delhi: Rawat.

Meighan, Roland, Stephen Walker, Iram Siraj-Blatchford, Len Barton, and Clive Harber. 2007. *Sociology of Educating* 5th Edition. 5th ed. Continuum.